International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(1): 01-03

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(1): 01-03
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 11-10-2021
Accepted: 02-12-2021

श्वेता
शोध-छात्रा, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,
भारत

Corresponding Author:
श्वेता
शोध-छात्रा, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,
भारत

राघवपाण्डवीयम्: एक श्लेषपरक अध्ययन

श्वेता

प्रस्तावना

स्वाधिष्ठानाम्बुजरज:पुञ्जपिंजरमूर्तये।
इच्छाधीनजगत्सृष्टिकर्मणे ब्रह्मणे नमः।।

संसार में पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति प्रत्येक मनुष्य का उद्देश्य होता है। पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति को सुगम बनाने के लिए ही समाज में कलाओं का अभ्युदय होता है। साहित्य ललित कला का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। किसी भी देश की संस्कृति का प्रतिबिम्ब उसका साहित्य होता है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है अर्थात् साहित्य द्वारा हम किसी जाति की सभ्यता, संस्कृति, संपत्ति आदि का सम्यक् ज्ञान पा सकते हैं। प्रायः सभी ने यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि संसार का सर्वप्रथम साहित्य भारत में ही वेदों के रूप में अवतीर्ण हुआ। समस्त भारतीय वाङ्गमय किसी न किसी रूप में वेदों या वैदिक साहित्य का ऋणी है। इसी साहित्य में कवि की कला को काव्य कहा जाता है जैसा विद्याधर ने एकावलि में लिखा है "कवयति इति कविः, तस्य कर्म काव्यम्" अथवा "काव्यति इति कविः तस्य कर्म काव्यम्"अर्थात् वर्णन करने वाले या जानने वाले को कवि तथा उसके कर्म या कृति को काव्य कहते हैं। ध्वन्यालोक की लोचन व्याख्या में भी यही कहा गया है- कवनीयं काव्यम्। यहाँ तक कि साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने तो रसात्मक वाक्य को ही काव्य माना है- वाक्यं रसात्मकं काव्यम्। काव्य को सर्वतोभावेन परिमार्जित स्वरुप देने का श्रेय भास को मिला है।

अद्यावधि इस काव्यसंसार में न जाने कितने ही काव्य रंगमंच पर आकर तिरोभूत हो गए परन्तु प्रत्येक साहित्य में विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न कुछ ऐसे रचनाकार हुआ करते हैं जिनकी लेखनी से प्रसूत ग्रन्थों से स्फूर्ति एवं प्रेरणा पाकर परवर्ती रचनाकार अपनी कृतियों का निर्माण करते हैं। जिस मार्ग से कालिदास आदि आगे बढे उस सरल सरस मार्ग पर आगे बढ़ना संभव नहीं था इसीलिए लोगों ने चित्र काव्य रचना में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करना प्रारंभ किया। संस्कृत साहित्य की यह प्रवाहमान धारा आठवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी पर्यंत युग परिवर्तन के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस युग में काव्य की रससिद्ध शैली का स्थान आलंकारिक शैली तथा पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति ने ग्रहण कर लिया था। इस कालावधि में यमक तथा श्लेष प्रधान काव्य की रचना हुई। महाकवि भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष जैसे कवियों ने जहां मात्र एक सर्ग की रचना यमक अथवा श्लेष अलंकार

का अवलंबन लेकर की, वहीं कुछ प्रतिभाशाली कवियों ने रामायण तथा महाभारत की कथावस्तु को प्रस्तुत करने वाले द्वयर्थी, पंचार्थी, सप्तार्थी तथा शतार्थी तक काव्यों की रचना श्लेष के आधार पर की। इसी महाकाव्य जगत की विशाल परम्परा में कविराज ने एक नूतन शैली को जन्म दिया। इनके महाकाव्य 'राघवपाण्डवीयम्' के प्रत्येक पद्य में श्लेष द्वारा रामायण और महाभारत की कथा का एक साथ वर्णन किया गया है। इस के राम पक्ष का कथानक कुछ स्थलों को छोड़कर अन्यत्र रामायण में वर्णित कथानक के अनुसार ही है। इसमें बालकाण्ड से युद्ध काण्ड तक का कथानक वर्णित है। द्वितीय पक्ष का कथानक महाभारत पर आश्रित है, इसमें आदि पर्व से लेकर शांति पर्व तक का कथानक वर्णित है। यद्यपि कुछ स्थल ऐसे हैं जो राघवपाण्डवीयम् में प्राप्त नहीं होते हैं तथा कुछ ऐसे प्रसंग भी हैं जो महाभारत से भिन्न हैं।

'राघवपाण्डवीयम्' के कर्ता का वास्तविक नाम माधवभट्ट था और कविराज सूरि, पण्डित आदि उनकी उपाधियाँ थीं। ये जयन्तपुरी के कदम्ब राजा कामदेव (११८२-८७ ई०) के सभा पण्डित थे। राघवपाण्डवीयम् की रचना राजा कामदेव को प्रसन्न करने के लिए की गयी थी। के०बी० पाठक के अनुसार कदम्ब वंश के ताम्रपत्र अभिलेख में राजा के द्वारा अनुदान का उल्लेख किया गया है। ये अनुदान माधव भट्ट को दिया गया था, इसमें पुत्रों, पिता तथा पितामह का नाम वही है जो कविराज के संबंधियों का था। कविराज की अन्य रचनाओं जैसे पारिजातहरण, कविराजस्तुति, मृगयाचंपू का भी उल्लेख मिलता है।

'राघवपाण्डवीयम्' में तेरह सर्ग हैं। कवि ने पाठकों के कौतूहलोत्पादन तथा मानसिक व्यायाम के लिए इसकी रचना की है। कर्म एवं ज्ञान प्रधान दो काव्यों रामायण एवं महाभारत का संश्लिष्ट रूप इस श्लेष काव्य में प्राप्त होता है। दोनों चरितनायकों के दो भिन्न मानवीय पहलुओं को काव्य का आधार बनाकर कविराज ने उन दोनों का प्रतिनिधित्व प्रस्तुत किया है। संस्कृत साहित्य में काव्यगत सौंदर्य का अनुभव करने के लिए उदाहरण के रूप में अग्रलिखित पद्य द्रष्टव्य है –

करग्रहात्कोसलकेकयेंद्रभुवो गुरुश्रीर्विनमत्सुमित्रः।
पृथावरोधः समरे जितारिर्गोप्ता हिमाद्रीश्वरतां स लेभे।।

रामायणपक्षे- करग्रहात्कोसलकेकयेंद्रभुवोः गुरुश्रीः विनमत्सुमित्रः पृथावरोधः समरे जितारिः गोप्ता सः हिमाद्रीश्वरतां लेभे।

अर्थात् कौशल्या व केकैयी से विवाह करने के कारण बढ़ी हुई श्री वाले, सुमित्रा के द्वारा प्रणाम किये जाते हुए,युद्ध में अबाधित, शत्रुओं को जीतने वाले राजा दशरथ ने हिमालय पर अधिकार किया।

महाभारतपक्षे- कोसलकेकयेंद्रभुवोः करग्रहात् गुरुश्रीः विनमत्सुमित्रः पृथावरोधः समरे जितारिः गोप्ता सः हि माद्रीश्वरतां लेभे।

कौशल व केकय राज्यों से करग्रहण करने के कारण बढ़ी हुई श्री वाले, अच्छे मित्रों से युक्त, कुंती रानी है जिनकी, युद्ध में शत्रुओं को जीतने वाले, रक्षक, राजा पाण्डु ने माद्री का स्वामित्व प्राप्त किया अर्थात् माद्री से विवाह किया।

श्लेषयुक्त शब्द-

१) कोसलकेकयेंद्रभुवोः करग्रहात्
२) हिमाद्रीश्वरतां
३) विनमत्सुमित्रः
४) पृथावरोधः

प्रस्तुत श्लोक में शब्दों का प्रयोग बड़े ही चमत्कारपूर्ण ढंग से किया गया है, जैसे 'करग्रहात्' रामायण पक्ष में करग्रहण का अर्थ विवाह तथा महाभारत पक्ष में करग्रहण का अर्थ कर-संग्रहण किया गया है। इसी श्लोक का दूसरा शब्द है 'पृथावरोधः' रामायण पक्ष में इसका विग्रह 'पृथौ अरोधः' अर्थात् युद्ध में अबाधित तथा महाभारत पक्ष में इसका विग्रह 'पृथा अवरोधो यस्य' अर्थात् पृथा=कुंती पत्नी है जिसकी, ऐसा प्रयोग किया गया है। सम्पूर्ण ग्रंथ में श्लेष का ऐसा प्रयोग अपने आप में एक अद्भुत कला है।

कविराज की इस रचना से अनेक कवि प्रभावित हुए और इसके अनुकरण पर कई काव्य लिखे गये। कविराज से प्रभावित कवि एवं उनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं- हरिदत्तसूरि (१८वीं शताब्दी) के 'राघवनैषधीयम्' में नल और राम की कथा, चिदम्बरकृत 'राघव-पाण्डवीय-यादवीयम्', में 'रामायण' एवं 'महाभारत' तथा 'भागवत' की कथा श्लेष के माध्यम से एक साथ वर्णित है। विद्यामाधव लिखित 'पार्वती-रुक्मिणीयम्' में पार्वती और रुक्मिणी की कथा उपस्थापित है। इन सभी से आगे बढ़कर एक दूसरे चिदम्बर कवि ने 'पञ्चकल्याणचम्पू' में श्लेष के द्वारा एक साथ विष्णु, राम, कृष्ण, शिव और सुब्रह्मण्य- इन पाँचों के विवाह का वर्णन किया है। नौवीं से बारहवीं शताब्दी तक

का काल विशेष रूप से चित्रकाव्यों के लिए अधिक महत्वपूर्ण रहा है। इस विषय में प्रोफ़ेसर बलदेव उपाध्याय का मत है-

"वस्तुतः यमक तथा श्लेष अलंकारों का प्रयोग वहीं तक श्लाघ्य है जहाँ तक वे मूलभूत रस का न तो व्याघात करें न तो उसके उन्मिलन में किसी प्रकार का विघ्न प्रस्तुत करें। इस युग के कवियों का ध्यान इसी दिमाग़ी कसरत को दिखलाने की ओर इतना अधिक था कि उन्होंने इन्हीं अलंकारों के प्रदर्शन की ओर अपने समस्त शक्ति लगा दी।

- संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ३०५

द्व्यर्थक काव्यों में कवि का प्रधान उद्देश्य दो व्यक्तियों के चरित को एक श्लोक में गूँथकर पाठक वर्ग को शाब्दिक चमत्कार से चमत्कृत करना है वहाँ भावनात्मक संवेग तथा तदनुकूल रसानुभूति के प्रति शैथिल्य स्वाभाविक ही है। श्लेष काव्यों के कथानक में रामायण की कथावस्तु के तुल्य उदात्तता नहीं प्राप्त होती तथापि श्लेष अलंकार के काठिन्य के साथ साथ कथावस्तु का प्रवाह भंग नहीं हुआ है। किंतु संस्कृत साहित्य में इन के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इस प्रकार का शाब्दिक चमत्कारपूर्ण कुतूहल संस्कृत के अतिरिक्त संसार की किसी अन्य भाषा में नहीं उपलब्ध होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कविराज, राघवपाण्डवीयम्, निर्णयसागर यंत्रालय, मुंबई, १८१७
2. कविराज, राघवपाण्डवीयम्, पंडित दामोदर झा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी २०१४
3. शुक्ला, रेखा, संस्कृत श्लेष काव्य एक परिदृष्टि, ज्ञानभारती पब्लिकेशंस दिल्ली, २०१७
4. झा, पं०मदनमोहन, रसगंगाधर, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २०१७ई०
5. डिंडोरिया, वेद प्रकाश, वासवदत्ता, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, २०१८ ई०
6. द्विवेदी, दुर्गाप्रसाद, साहित्यदर्पण, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली, १९८२ई०
7. विश्वेश्वर, काव्यप्रकाश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, २०१५ई०
8. शास्त्री, डॉ श्रीनिवास एवं रतिराम शास्त्री, दशरूपक, साहित्यभण्डार, मेरठ, १९६९ई०
9. सिद्धान्तशिरोमणि, आचार्य विश्वेश्वर, ध्वन्यालोक, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, संवत् २०६२
10. आप्टे, वामन शिवराम, संस्कृत हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, १९७३ई०
11. उपाध्याय, बलदेव, संस्कृत शास्त्र का इतिहास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, २००६ई०
12. ओक, श्री कृष्ण जी गोविन्द, अमरकोश (क्षीरस्वामी कृत अमरकोशोद्घाटन व्याख्योपेता), उपासनाप्रकाशन, दिल्ली, १९८१ई०
13. द्विवेदी, डॉ०कपिलदेव, संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास
14. वर्मा, डॉ०सत्यकाम, संस्कृतव्याकरण का उद्भव एवं विकास, मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी, १९७१ई०
15. विद्यावारिधि, विजयपाल, काशिका, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ, १९९७ई०